रूसी कहानी

आंतोन चेखव

दुलहन

दुलहन (रूसी कहानी) : आंतोन चेखव

दुलहन (रूसी कहानी) : आंतोन चेखव

Dulhan (Russian Story) : Anton Chekhov

1

रात के दस बज चुके थे और बग़ीचे में पूरा चाँद चमक रहा था। शूमिन परिवार में दादी मार्फ़ा मिख़ाइलोव्ना की आज्ञानुसार आयोजित शाम की प्रार्थना अभी-अभी ख़त्म हुई थी, और नाद्या को जो एक मिनट के लिए बग़ीचे में निकल आयी थी, दिखायी पड़ रहा था कि खाने के कमरे में रात का भोजन परोसा जा रहा है। उसकी दादी फूली-फूली रेशमी पोशाक पहने मेज़ के चारों ओर मँडरा रही थीं; पादरी अन्द्रेई नाद्या की माँ नीना इवानोव्ना से बातें कर रहे थे। अब खिड़की के पीछे नीना इवानोव्ना बत्ती की रोशनी में न जाने क्यों, नवयुवती-सी दिख रही थी। माँ के पास पादरी अन्द्रेई का लड़का अन्द्रेई अन्द्रेइच खड़ा हुआ ध्यान से बातचीत सुन रहा था।

बग़ीचे में ठण्डक और ख़ामोशी थी, गहरी निश्चल छायाएँ ज़मीन

पर पसर रही थीं। बहुत दूर से, शायद शहर के बाहर से मेंढकों के टर्राने की आवाज़ आ रही थी। हवा में मई की, सुहावनी मई की उमंग थी। ताज़ी हवा में साँस गहरी आती थी; और यह ख़याल आता कि यहाँ नहीं, कहीं शहर से बहुत दूर, आसमान के नीचे, पेड़ों की चोटियों के ऊपर, खेतों और झाड़ियों में एक विशेष वसन्ती जीवन - रहस्यमय और अत्यन्त सुन्दर, अमूल्य और पवित्र जीवन - आरम्भ हो रहा है जो कमज़ोर, पापी मानव की पहुँच से बाहर है। जाने क्यों रोने को जी चाहता था।

नाद्या तेईस साल की हो गयी थी; सोलह साल की उम्र से ही वह व्यग्रता के साथ शादी के सपने देख रही थी, और अब आ़खिरकार खाने के कमरे में खड़े नौजवान अन्द्रेई अन्द्रेइच से उसकी सगाई हो चुकी थी। वह अन्द्रेई को पसन्द करती थी, शादी की तारीख़ सातवीं जुलाई तय कर दी गयी थी लेकिन उसे कोई ख़ुशी नहीं महसूस हो रही थी, न रात में अच्छी तरह नींद आती, उसकी उमंग ग़ायब हो गयी थी... नीचे के रसोईघर की खुली खिड़की से छुरी-काँटों की खनखनाहट सुनायी पड़ रही थी, दरवाज़ा बराबर भड़भड़ा रहा था। मुर्ग़ा भूनने और मसालेदार चेरी की ख़ुशबू आ रही थी। ऐसा मालूम होता था कि यह सब बिना बदले अनन्त काल तक ऐसे ही चलता रहेगा!

मकान से कोई निकला और ओसारे में खड़ा हो गया। यह अलेक्सान्द्र तिमोफ़ेइच या जैसा कि सब कोई उसे पुकारते थे, साशा था, जो मास्को से क़रीब दस रोज़ पहले आया था। बहुत दिन हुए नाद्या की दादी की दूर की कुलीन रिश्तेदार, छोटे क़द

की, दुबली-पतली, रुग्ण विधवा मरीया पेत्रोव्ना दादी से मदद माँगने के लिए मिलने आया करती थी। उसी का एक लड़का था साशा। पता नहीं क्यों लोगों का कहना था कि वह एक अच्छा कलाकार था और जब उसकी माँ मरी, तो दादी ने पुण्य के लिए मास्को के कोमिसारोव तकनीकी स्कूल में उसे भेज दिया। एक या दो साल बाद उसने अपना तबादला चित्रकला विद्यालय में करा लिया, जहाँ वह लगभग पन्द्रह साल रहा। अन्त में वह वास्तु-शिल्प विभाग की अन्तिम परीक्षा में किसी तरह उत्तीर्ण हो गया; उसने वास्तु-शिल्पी की हैसियत से कभी काम नहीं किया, बल्कि मास्को के एक लिथो-छापेख़ाने में नौकरी कर ली। वह क़रीब-क़रीब हर गरमी में आमतौर से काफ़ी बीमार होकर दादी के यहाँ आराम करने और स्वास्थ्य-लाभ के लिए आता था।

गले तक बटन लगाये वह एक लम्बा कोट और पुरानी-सी किरमिच की पतलून पहने हुए था, जिसके पायंचों के किनारों में छूँछके निकल रहे थे, और उसकी क़मीज़ पर इस्त्री नहीं थी। उसके चेहरे पर ताज़गी नहीं थी। वह दुबला, बड़ी-बड़ी आँखों, लम्बी हड़ीली उँगलियों और दाढ़ी वाला, साँवले रंग का, परन्तु सुन्दर युवक था। शूमिन परिवार में उसे लगता जैसे वह अपने ही लोगों के बीच है। उसके ठहरने का कमरा भी यहाँ साशा का कमरा ही कहलाता था।

ओसारे से उसने नाद्या को देखा और उसके पास चला गया।

"यहाँ बहुत सुहावना है," उसने कहा।

"हाँ, बहुत सुहावना है, तुम्हें पतझड़ तक यहाँ ठहरना चाहिए।"

"हाँ, लगता है ठहरना ही पड़ेगा। मैं शायद सितम्बर तक यहाँ ठहरूँगा।"

वह अकारण हँसा और उसके बग़ल में बैठ गया।

"मैं यहाँ बैठी माँ को देख रही हूँ," नाद्या ने कहा। "यहाँ से वह बहुत ही युवा मालूम पड़ रही है। यह ठीक है कि मेरी माँ में कमज़ोरियाँ हैं," उसने ज़रा रुककर आगे कहा, "मगर फिर भी वह अनूठी औरत है।"

"हाँ, वह बहुत अच्छी है..." साशा ने सहमति प्रकट की। "अपनी तरह से तुम्हारी माँ बहुत अच्छी और दयालु है, लेकिन... मैं कैसे समझाऊँ? मैं आज सवेरे तड़के रसोईघर में गया था और मैंने वहाँ चार नौकरों को फ़र्श पर सोते देखा, बिना बिस्तर, बिछाने के लिए सिर्फ़ चिथड़े ... बदबू, खटमल, तिलचट्टे... बिल्कुल बीस साल पहले की तरह, ज़रा भी बदले बिना। दादी को दोष नहीं देना चाहिए, वह बुड्ढी हैं; लेकिन तुम्हारी माँ, जिन्हें फ़्रेंच भाषा आती है और जो नाटकों में भाग लेती हैं... उन्हें तो समझना चाहिए।"

साशा की आदत थी कि बोलते समय सुनने वाले की ओर दो लम्बी, पतली-सी उँगलियाँ उठाया करता था।

"यहाँ मुझे हर चीज़ अजीब लगती है," उसने कहा। "मैं इनका आदी नहीं हूँ - कोई कभी काम नहीं करता है। तुम्हारी माँ रानी

की तरह टहलने के अलावा कुछ नहीं करती हैं, दादी भी कुछ नहीं करती हैं और न तुम। और तुम्हारा वह मंगेतर, वह भी कुछ नहीं करता है।"

नाद्या पिछले साल यह सब कुछ सुन चुकी थी और उसे लगता था कि दो साल पहले भी उसने यही सब सुना था। नाद्या को पता था कि साशा सिर्फ़ इसी तरह सोच सकता है। एक वक़्त था कि जब ये बातें नाद्या को अच्छी चुहल लगती थीं, लेकिन अब किसी वजह से उसे चिढ़ लग रही थी।

"यह पुराना पचड़ा है, मैं इसे सुनते-सुनते ऊब गयी हूँ," नाद्या ने उठते हुए कहा। "क्या तुम कोई नयी बात नहीं सोच सकते?"

वह हँसा और उठ खड़ा हुआ, और दोनों घर में वापस चले गये। ख़ूबसूरत, लम्बी और छरछरी वह साशा के बग़ल में चल रही थी और बहुत सजी-धजी, बहुत हृष्ट-पुष्ट लग रही थी। उसे ख़ुद इस बात का अहसास था और साशा के लिए अफ़सोस व न जाने क्यों उसे कुछ झेंप भी लग रही थी।

"तुम बहुत बेकार बातें करते हो," उसने कहा। "देखो, तुमने अभी मेरे अन्द्रेई के बारे में कहा है, लेकिन तुम उसे ज़रा भी नहीं जानते हो।"

"मेरा अन्द्रेई... तुम्हारे अन्द्रेई की चिन्ता नहीं, मुझे तुम्हारी जवानी की फ़िक्र है।"

जब वे हॉल में पहुँचे, उस वक़्त सब खाने के लिए बैठ ही रहे

थे। नाद्या की दादी - दुहरे बदन की, मोटी भौंहों और मूँछों वाली असुन्दर बूढ़ी औरत ज़ोर से बात कर रही थीं। दादी की आवाज़ और बात करने के ढंग से ज़ाहिर होता था कि घर की असली मालकिन वही हैं। बाज़ार में कई दुकानें उनकी थीं, और खम्भों और बग़ीचे वाला मकान भी उन्हीं का था। लेकिन हर रोज़ सवेरे वह रो-रोकर भगवान से प्रार्थना करतीं कि भगवान सर्वनाश से उनकी रक्षा करे। उनकी बहू, नाद्या की माँ गेहुएँ रंग की नीना इवानोव्ना कमर पर कसी पोशाक पहने, बिना कमानी का चश्मा लगाये और सब उँगलियों में हीरे की अँगूठियाँ पहने हुए थी; पादरी अन्द्रेई, पोपले और दुबले, जो हमेशा ऐसे लगते थे जैसे कोई मज़ाक़िया बात कहने जा रहे हों, और उनका लड़का अन्द्रेई अन्द्रेइच - नाद्या का मंगेतर - तगड़ा, ख़ूबसूरत, घुँघराले बालों वाला नौजवान, जो एक अभिनेता या कलाकार ज़्यादा लगता था, ये तीनों सम्मोहन-विद्या के बारे में बातें कर रहे थे।

"तुम यहाँ एक हफ़्ते में भले-चंगे हो जाओगे," दादी ने साशा से कहा।

"लेकिन तुम्हें ज़्यादा खाना चाहिए। ज़रा अपनी ओर तो देखो," उन्होंने आह भरी,

"क्या शक्ल बना रखी है। आवारा पुत्र हो न..."

"कुकर्म में अपनी सम्पत्ति उड़ा दी... और कंगाल हो गया..." पादरी अन्द्रेई ने धीरे-धीरे बोलते हुए बाइबिल के शब्द कहे। उनकी आँखें हँस रही थीं।

"मैं अपने पिता को प्यार करता हूँ," अन्द्रेई अन्द्रेइच ने अपने पिता का कन्धा छूते हुए कहा।

किसी ने कुछ नहीं कहा। साशा एकाएक हँसा और उसने नेपकिन से अपने होंठ दबा लिये।

"तो आपको सम्मोहन में विश्वास है?" पादरी अन्द्रेई ने नीना इवानोव्ना से पूछा।

"मैं नहीं कह सकती कि मैं इसमें यक़ीन करती हूँ," नीना इवानोव्ना ने गम्भीर, लगभग कठोर भाव दर्शाते हुए जवाब दिया, "लेकिन मुझे यह मानना पड़ता है कि प्रकृति में बहुत कुछ अगम्य और रहस्यमय है।"

"मैं आपसे सहमत हूँ, हालाँकि मैं यह और जोड़ दूँ कि हम लोगों की धार्मिक आस्था रहस्य का क्षेत्र काफ़ी कम कर देती है।"

एक बहुत ही बड़ा और चर्बीदार मुर्ग़ मेज़ पर परोसा गया। पादरी अन्द्रेई और नीना इवानोव्ना बातों में मशग़ूल रहे। नीना इवानोव्ना की उँगलियों के हीरे चमक रहे थे, फिर आँखों में आँसू चमकने लगे, वह बहुत भावुक हो गयी थी।

"मैं आप के साथ तर्क करने का साहस तो नहीं करती हूँ," उसने कहा, "लेकिन आप सहमत होंगे कि ज़िन्दगी में बहुत-सी अनबूझ पहेलियाँ हैं।"

"एक भी नहीं, मैं आपको यक़ीन दिलाता हूँ।"

खाने के बाद अन्द्रेई अन्द्रेइच ने वायलिन बजाया। संगत में नीना

इवानोव्ना पियानो बजा रही थी। अन्द्रेई अन्द्रेइच ने विश्वविद्यालय के भाषाविज्ञान विभाग से दस साल पहले डिग्री प्राप्त की थी, परन्तु न वह नौकरी करता था और न उसका कोई निश्चित धन्ध था, सिवा इसके कि कभी-कभी वह सहायतार्थ संगीत-कार्यक्रमों में वायलिन बजाता था। शहर में वह एक संगीतज्ञ के रुप में मशहूर था।

अन्द्रेई अन्द्रेइच वाद्य बजा रहा था और सब ख़ामोशी से सुन रहे थे। मेज़ पर समोवार से हौले-हौले भाप निकल रही थी और अकेला साशा चाय पी रहा था। जैसे ही बारह बजे वायलिन का एक तार टूट गया। सब हँस पड़े और विदाई की भड़भड़ी शुरु हो गयी।

अपने मंगेतर से शुभ रात्रि कहकर नाद्या ऊपर चली गयी, जहाँ वह अपनी माँ के साथ रहती थी (नीचे के हिस्से में दादी रहती थीं)। नीचे हॉल में बत्तियाँ बुझायी जा रही थीं, लेकिन साशा बैठा चाय पीता रहा। वह हमेशा देर तक चाय पीता था, मास्को के रिवाज़ के मुताबिक़ एक के बाद एक छह-सात गिलास चाय। कपड़े उतारकर बिस्तर पर लेटने के बहुत देर बाद तक नाद्या को नौकरों के मेज़ साफ़ करने की आवाज़ और दादी की डाँट-डपट सुनायी पड़ती रही। आख़िरकार घर में ख़ामोशी छा गयी। सिर्फ़ कभी-कभी नीचे साशा के कमरे में खाँसने की गहरी आवाज़ आती थी।

2

ज़रूर दो बजे होंगे जब नाद्या जग गयी, पौ फटने लगी थी। दूर चौकीदार की लाठी की आवाज़ सुनायी पड़ रही थी। नाद्या को नींद नहीं आ रही थी, बिस्तर ज़रूरत से ज़्यादा मुलायम जान पड़ रहा था। गत कई रातों की तरह मई की इस रात को भी वह बिस्तर में बैठ गयी और विचारों में खो गयी। ये विचार पिछली रात की ही तरह एक ही जैसे और निरर्थक थे और उसका पीछा नहीं छोड़ रहे थे। अन्द्रेई अन्द्रेइच का ख़याल आया कि किस तरह वह नाद्या से मिलने-जुलने लगा और फिर उससे शादी का प्रस्ताव रखा, और कैसे नाद्या ने वह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और बाद में धीरे-ध्ीरे इस अच्छे और चतुर आदमी की क़द्र करने लगी। लेकिन जब शादी को महीना-भर रह गया था, तो न मालूम क्यों वह डर और घबराहट महसूस करने लगी थी, जैसे कि उस पर कोई अनजान बोझ पड़ने वाला हो।

"ठक-ठक, ठक-ठक..." चौकीदार की अलसायी आहट सुनायी पड़ रही थी, "ठक-ठक... ठक-ठक..."

पुरानी बड़ी खिड़की से बग़ीचा और उसके पीछे फूलों से लदी बकाइन की झाड़ियाँ, ठण्डी हवा में उनींदी और अलसायी-सी दिख रही थीं। और एक सफ़ेद घना कुहासा हौले-हौले बकाइन की झाड़ियों पर छाता जा रहा था मानो उन्हें अपने दामन में समेटने चला हो। दूर पेड़ों से उनींदे कौवों की आवाज़ सुनायी पड़ रही थी।

"हे ईश्वर, क्यों मेरा दिल इतना भारी हो रहा है?"

क्या शादी से पहले सब लड़कियाँ ऐसा ही महसूस करती हैं? कौन जाने? या यह साशा का प्रभाव है? लेकिन साशा तो बरसों से उन्हीं पुरानी बातों को बराबर दोहरा रहा है मानो रटी हुई हों। और जब भी कुछ कहता है, तो बहुत भोला और अजीब लगता है। मगर वह साशा का विचार अपने दिमाग़ से निकाल क्यों नहीं पा रही? क्यों?

चौकीदार बहुत देर पहले ही गश्त ख़त्म कर चुका था। पेड़ों की चोटियों पर और खिड़की के नीचे चिड़ियों ने चहचहाना शुरू कर दिया था, बग़ीचे का कुहासा दूर हो गया था, हर चीज़ वसन्त की धूप से चमक रही थी, हर चीज़ मुस्कुराती हुई-सी लग रही थी। थोड़ी देर में सारा बग़ीचा सूर्य की प्यारी गरमी से सजीव हो उठा, पेड़ों की पत्तियों पर ओस हीरों की तरह चमक रही थी और पुराना उपेक्षित बग़ीचा आज के सवेरे में तरुण और उल्लासित हो उठा था। दादी जाग चुकी थीं। साशा अपनी रूखी खाँसी खाँसने लगा था। नीचे से नौकरों के समोवार लाने और इधर-उधर कुर्सियाँ हटाये जाने की आवाज़ आ रही थी।

समय धीरे-धीरे गुज़र रहा था। नाद्या उठकर बहुत देर से बग़ीचे में टहल रही थी, मगर अभी भी सवेरा ही चल रहा था।

नीना इवानोव्ना, आँखों में आँसू भरे, हाथ में मिनरल वाटर का गिलास लिये हुए आयी। उसे स्पिरिटिज़्म और होम्योपैथी में दिलचस्पी थी, वह काफ़ी पढ़ती थी और उसे अपने मन में उठने वाली शंकाओं के बारे में बात करने का शौक़ था। और नाद्या

का ख़याल था कि इन सबमें कोई रहस्यमय गूढ़ महत्त्व है। उसने अपनी माँ का चुम्बन किया और उसके बग़ल में चलने लगी।

"तुम किस बात पर रोती रही हो, माँ?" उसने पूछा।

"मैंने कल रात एक बूढ़े आदमी और उसकी बेटी के बारे में किताब पढ़ी थी। बूढ़ा किसी दफ़्तर में नौकरी करता था और उसका अफ़सर बूढ़े की लड़की से प्रेम करने लगा। मैंने किताब अभी ख़त्म नहीं की है, लेकिन एक स्थल पर मैं रुलाई न रोक सकी," नीना इवानोव्ना ने कहा और गिलास से एक घूँट भरा। "मुझे आज सवेरे याद आयी और फिर रुलाई आ गयी।"

"और मैं आजकल बहुत उदास हूँ," नाद्या ने ज़रा रुककर कहा। "मुझे नींद क्यों नहीं आती?"

"मुझे नहीं मालूम, बिटिया। जब मैं सो नहीं सकती हूँ, तो मैं अपनी आँखें कसकर बन्द कर लेती हूँ, इस तरह, और कल्पना करती हूँ कि आन्ना कारेनिना कैसे चलती थी और किस तरह बोलती थी या मैं किसी ऐतिहासिक बात की कल्पना करने की कोशिश करती हूँ, किसी पुराने ज़माने की बात की कल्पना..."

नाद्या को महसूस हुआ कि उसकी माँ उसे नहीं समझ पायी, उसे समझने में असमर्थ और अयोग्य है। इससे पहले कभी उसने यह बात महसूस नहीं की थी। इस एहसास से वह डर गयी, उसे कहीं छिपने की इच्छा हुई; और वह अपने कमरे में चली गयी।

दो बजे सब खाना खाने बैठे। आज बुध यानी व्रत का दिन था

और दादी के खाने में बिना गोश्त का शोरबा और दलिये के साथ मछली परोसी गयी। दादी को चिढ़ाने के लिए साशा बिना गोश्त का और गोश्त का शोरबा दोनों खा रहा था। वह सारा वक़्त मज़ाक़ करता रहा। लेकिन उसके लतीफ़े लम्बे और हमेशा नैतिकता गर्भित होते थे और बिल्कुल पुरमज़ाक़ नहीं मालूम पड़ते थे; कोई हँसी की बात कहने के पहले वह अपनी दो लम्बी, हड़ीली और निर्जीव-सी उँगलियाँ उठाता और तभी यह बात याद आती कि वह बहुत बीमार है और शायद ज़्यादा दिन ज़िन्दा न रहे, और इतना दुख मन में उमड़ पड़ता कि रोना आ जाता।

भोजन के बाद दादी अपने कमरे में आराम करने चली गयीं। नीना इवानोव्ना थोड़ी देर पियानो बजाती रही और फिर वह भी उठकर कमरे के बाहर चली गयी।

"ओह, प्यारी नाद्या," साशा ने खाने के बाद अपनी रोज़मर्रा की बात छेड़ते हुए कहा, "काश तुम मेरी बात सुनतीं!"

वह एक पुराने फ़ैशन की आरामकुर्सी में धँसी, आँखें बन्द किये बैठी थी, और साशा कमरे में क़दम नाप रहा था।

"काश तुम चली जाओ और पढ़ो," उसने कहा। "केवल सुविज्ञ और सन्त व्यक्ति दिलचस्प होते हैं, केवल उन्हीं की ज़रूरत होती है। जितने ही ज़्यादा ऐसे आदमी होंगे, उतनी ही शीघ्र पृथ्वी पर स्वर्ग आयेगा। तब धीरे-धीरे तुम्हारे इस शहर में हर चीज़ उलट-पलट हो जायेगी; हर चीज़ बदल जायेगी मानो कोई जादू हो

गया हो। और फिर यहाँ शानदार भव्य इमारतें, सुन्दर उद्यान, बढ़िया फ़व्वारे और बहुत ही अच्छे, असाधारण लोग होंगे... लेकिन यह मुख्य बात नहीं है। मुख्य बात यह है कि लोग भीड़ नहीं होंगे, जैसा कि इस शब्द के मानी हम समझते हैं। अपनी मौजूदा शक्ल में यह बुराई ग़ायब हो जायेगी, क्योंकि हर व्यक्ति की आस्था होगी और वह जानता होगा कि उसे जीवन में क्या करना है, और कोई भी भीड़ से समर्थन नहीं चाहेगा। प्यारी, अच्छी नाद्या, चली जाओ! दिखा दो सबको कि इस सुस्त, पापी और गतिरुद्ध ज़िन्दगी से तुम ऊब गयी हो। कम से कम तुम अपने को तो दिखा दो!"

"असम्भव, साशा, मैं शादी करने जा रही हूँ।"

"रहने दो! क्या ज़रूरत है इस शादी की?"

वे बग़ीचे में चले गये और टहलने लगे।

"कुछ भी हो, मेरी प्यारी, तुम्हें सोचना ही पड़ेगा, समझना होगा कि तुम लोगों की बेकार की ज़िन्दगी कितनी घृणास्पद, कितनी अनैतिक है," साशा बोलता रहा। "तुम्हारी माँ, तुम्हारी दादी और तुम आलसी जीवन बिता सको, इसके लिए दूसरे कमरतोड़ काम करते हैं। तुम लोग दूसरों की ज़िन्दगी नष्ट कर रहे हो, क्या यह अच्छा है, क्या यह हेय नहीं है?"

नाद्या कहना चाहती थी, "हाँ, तुम ठीक कहते हो," बताना चाहती थी कि वह उसे समझती थी, लेकिन उसकी आँखों में आँसू भर आये, वह ख़ामोश हो गयी, लगा जैसे कि अपने में

सिमट गयी हो और अपने कमरे में चली गयी।

दिन ढले अन्द्रेई अन्द्रेइच आया और सदा की भाँति बहुत देर तक वायलिन बजाता रहा। वह प्रकृति से चुप्पा था, और उसे वायलिन बजाना शायद इसीलिए प्रिय था, क्योंकि बजाते वक़्त उसे बोलना नहीं पड़ता था। दस बजने के बाद घर जाने के लिए अपना कोट पहनकर उसने नाद्या को अपनी बाँहों में भर लिया और उसके कन्धों, बाँहों और चेहरे पर गरम चुम्बनों की बौछार कर दी। "मेरी प्यारी, मेरी प्रियतमा, मेरी सुन्दरी!" वह फुसफुसा रहा था। "मैं कितना ख़ुश हूँ! कहीं मैं ख़ुशी से पागल न हो जाऊँ!"

और नाद्या को लगा कि वह बहुत पहले ही ये सारी बातें सुन चुकी है या किसी पुराने जीर्ण-शीर्ण उपन्यास में पढ़ चुकी है।

हॉल में साशा अपनी पाँचों लम्बी उँगलियों की नोकों पर तश्तरी सँभाले हुए चाय पी रहा था। दादी अकेली ताश खेल रही थीं। नीना इवानोव्ना पढ़ रही थी। दीपक की रोशनी थिरक रही थी और हर चीज़ स्थिर और सुरक्षित मालूम हो रही थी। नाद्या ने शुभ रात्रि कहा और अपने कमरे में चली गयी। बिस्तर पर लेटते ही वह सो गयी लेकिन पिछली रातों की तरह ऊषा की पहली किरण के साथ ही वह जाग गयी। वह सो नहीं सकी, उसके दिल में बेचैनी और एक बोझ-सा था। वह उठकर बैठ गयी और घुटनों पर सिर रखकर सोचने लगी - अपने मंगेतर के बारे में, अपनी शादी के बारे में... किसी कारण से उसे याद आया कि

माँ अपने स्वर्गीय पति को प्यार नहीं करती थी और अब उसके पास अपना कहने को कुछ भी नहीं था और वह पूरी तरह से दादी यानी अपनी सास पर निर्भर थी। और नाद्या बहुत सोचने पर भी यह नहीं समझ पा रही थी कि क्यों वह अब तक अपनी माँ को अनूठी समझती आयी थी, और क्यों उसने यह नहीं देखा था कि वह एक मामूली दुखी औरत है।

नीचे साशा भी जाग चुका था, उसकी खाँसी सुनायी दे रही थी। वह एक अजीब भोला व्यक्ति है, नाद्या ने सोचा, और उसके सारे सपनों में कुछ बेतुकापन है - उन शानदार और बढ़िया उद्यानों और फ़व्वारों के सपनों में। लेकिन उसके भोलेपन में, बेतुकेपन में भी इतनी सुन्दरता है कि ज्यों ही नाद्या ने यह सोचा कि शायद उसे सचमुच जाकर पढ़ना चाहिए, त्यों ही उसके दिल में, उसके अन्तरतम में ताज़गी देने वाली ठण्डक भर गयी और वह आह्लादविभोर हो उठी।

"पर नहीं, इसके बारे में न सोचना ही अच्छा है," वह फुसफुसायी, "इसके बारे में सोचना ही नहीं चाहिए..."

"ठक-ठक, ठक-ठक..." दूर से चौकीदार की आवाज़ आ रही थी, "ठक-ठक, ठक-ठक..."

3

जून के मध्य में साशा एकाएक ऊब गया और मास्को वापस जाने की बातें करने लगा।

"मैं इस शहर में नहीं रह सकता," वह रुखाई से कहता। "न नल है और न परनाले का इन्तज़ाम! मुझे खाना खाते भी घिन होती है - रसोई इतनी गन्दी है..."

"थोड़ा और इन्तज़ार करो, आवारा पुत्र!" दादी न जाने क्यों बुदबुदाते हुए कहतीं, "सातवीं तारीख़ को शादी है!"

"मैं नहीं रुकना चाहता।"

"तुम तो यहाँ सितम्बर तक रहना चाहते थे।"

"और अब मैं नहीं चाहता। मुझे काम करना है!"

गर्मियाँ ठण्डी और भीगी निकलीं। पेड़ हमेशा टपटपाते रहते। बग़ीचा उदास और अप्रिय मालूम होता। सचमुच काम करने को जी चाहता था। ऊपर-नीचे हर कमरे से अनजानी औरतों की आवाज़ें सुनायी पड़तीं। दादी के कमरे में सिलाई की मशीन खटखट करती। यह सब दहेज़ की तैयारी के शोर-ग़ुल का हिस्सा था। नाद्या के लिए जाड़े के ओवरकोट ही छह बन रहे थे और उनमें सबसे सस्ता - दादी के शब्दों में - तीन सौ रूबल का था! इस शोर-शराबे से साशा को चिढ़ हो रही थी। वह अपने कमरे में मुँह फुलाये बैठा रहता। लेकिन फिर उसे ठहरने के लिए राजी कर लिया गया और उसने पहली जुलाई से पहले न जाने का वादा कर लिया।

वक़्त जल्दी गुज़र गया। सेण्ट प्योत्र के दिन खाना खाने के बाद अन्द्रेई अन्द्रेइच नाद्या के साथ मोस्कोव्स्काया सड़क पर गया -

एक बार फिर वह मकान देखने, जो नवदम्पति के लिए किराये पर लिया गया था और कब से तैयार कर दिया गया था। यह मकान दुमंज़िला था, लेकिन अभी ऊपर का तल्ला ही सजाया गया था। चमकते हुए फ़र्श वाले हॉल में मुड़ी हुई लकड़ी की कुर्सियाँ, एक बड़ा पियानो और स्वरलिपि रखने के लिए स्टैण्ड था। ताज़े रंग की बू आ रही थी। दीवाल पर सुनहरे चौखटे में मढ़ा हुआ एक बड़ा तैल-चित्र टँगा हुआ था - नग्न स्त्री और उसके पास रखा टूटे हत्थे वाला बैंगनी रंग का फूलदान।

"बहुत सुन्दर तस्वीर है!" अन्द्रेई अन्द्रेइच ने सम्मान भरी उसास के साथ कहा, "यह शिश्माचेव्स्की की कृति है।"

आगे बैठक थी, जिसमें एक गोल मेज़, एक सोफ़ा और चमकीले नीले रंग के कपड़े में मढ़ी हुई आरामकुर्सियाँ थीं। सोफ़े के ऊपर पादरी अन्द्रेई का एक बड़ा चित्र था। चित्र में पादरी साहब अपने सब तमग़े और अपना ख़ास टोप लगाये हुए थे। फिर वे लोग खाने के कमरे में गये और वहाँ से सोने के कमरे में। यहाँ मद्धिम रोशनी में अग़ल-बग़ल दो बिस्तर लगे हुए थे, और ऐसा लगता था कि इस कमरे को सजाने वालों ने यह समझ लिया था कि यहाँ जीवन हमेशा सुखी रहेगा, सुख के अलावा यहाँ और कुछ हो ही नहीं सकता। अन्द्रेई अन्द्रेइच नाद्या को कमरे दिखाता रहा तथा सारा वक़्त नाद्या की कमर में हाथ डाले रहा। वह अपने को कमज़ोर, दोषी समझ रही थी, उसे उन तमाम कमरों, बिस्तरों तथा कुर्सियों से घृणा हो रही थी। नंगी औरत से तो उसे मतली आ रही थी। अब वह साफ़ तौर पर

समझ रही थी कि अन्द्रेई अन्द्रेइच के लिए उसके मन में प्यार नहीं रहा है, शायद वह कभी उसे प्यार नहीं करती थी। हालाँकि वह रात-दिन इसके बारे में सोचती रहती थी, पर वह ठीक समझ नहीं पा रही थी और समझ भी नहीं सकती थी कि यह कैसे कहे, किससे कहे और कहे ही क्यों। वह उसकी कमर में हाथ डाले था, उससे इतनी दयालुता से, इतनी नम्रता से बातें कर रहा था, अपने इस घर में घूमता हुआ इतना ख़ुश था। और नाद्या को सिर्फ़ ओछापन, जाहिल, भौंड़ा, असह्य ओछापन दिखलायी पड़ रहा था और अपनी कमर में अन्द्रेई अन्द्रेइच का हाथ उसको लोहे के घेरे की तरह ठण्डा और सख़्त मालूम हो रहा था। किसी भी क्षण वह भाग जाने को, सिसकियाँ भरने को, खिड़की से बाहर कूद पड़ने को तैयार थी। अन्द्रेई अन्द्रेइच उसको ग़ुसलख़ाने में ले गया, दीवाल में जड़े हुए एक नल को दबाया और पानी बह निकला।

"देखा?" उसने कहा और हँस पड़ा। "मैंने एक सौ बाल्टियों की टँकी बनवायी है ताकि हमारे ग़ुसलख़ाने में पानी आता रहे।"

वे थोड़ी देर अहाते में टहलते रहे और फिर सड़क पर निकल आये और किराये की घोड़ागाड़ी में बैठ गये। सड़क पर धूल के बादल उड़ने लगे और लगा कि पानी बरसने वाला है।

"तुम्हें सर्दी तो नहीं लग रही?" अन्द्रेई अन्द्रेइच ने धूल से आँखें बचाते हुए पूछा।

उसने जवाब नहीं दिया।

"याद है कल साशा मेरे कुछ काम न करने पर भर्त्सना कर रहा था?" उसने थोड़ी देर रुककर कहा। "हाँ, वह ठीक था! एकदम ठीक था! मैं कुछ नहीं करता और न कुछ कर सकता हूँ। ऐसा क्यों है, प्रिये, क्या कारण है कि टोपी में बैज लगाकर दफ़्तर जाने के विचार-मात्र से मुझे मतली आने लगती है? क्या कारण है कि किसी वकील को, लैटिन के शिक्षक या परिषद के सदस्य को देखकर ही मेरा दिल ख़राब हो जाता है। आह रूस-माता! रूस-माता! तुम अपने वक्ष पर कितने आलसियों और बेकारों को वहन करती हो! मेरी तरह के कितने लोगों को, कष्टभोगी रूस-माता!"

और अपनी निष्क्रियता को वह एक सर्वव्यापी परिघटना बता रहा था, उसमें समय का रुख़ देख रहा था।

"जब हमारी शादी हो जायेगी," वह कह रहा था, "हम देहात में चले जायेंगे, प्रिये, वहाँ हम काम करेंगे। हम वहाँ बग़ीचे और झरने वाला एक छोटा-सा ज़मीन का टुकड़ा ख़रीद लेंगे और मेहनत करेंगे, जीवन का प्रेक्षण करेंगे... आह, कितना सुन्दर होगा यह!"

उसने अपना टोप उतार लिया। उसके बाल हवा में लहराने लगे। नाद्या उसकी बातें सुनते हुए सोच रही थी, "हे ईश्वर! मैं घर जाना चाहती हूँ! हे ईश्वर!" घर के पास ही घोड़ागाड़ी पैदल जा रहे पादरी अन्द्रेई से आगे निकली।

"अरे देखो, वह पिताजी जा रहे हैं!" अन्द्रेई अन्द्रेइच ने ख़ुशी से

कहा और अपना टोप हिलाया। "मैं अपने पिता को प्यार करता हूँ, वाक़ई प्यार करता हूँ," उसने घोड़ागाड़ी का किराया देते हुए कहा।

अप्रसन्नता और अस्वस्थता अनुभव करती हुई नाद्या घर में गयी। वह बस यही सोच रही थी कि सारी शाम मेहमान रहेंगे और उसे उनकी ख़ातिर-तवाज़ा करनी होगी, मुस्कुराना होगा, वायलिन सुननी पड़ेगी, हर तरह की बेवक़ूफ़ी भरी बातें सुननी पड़ेंगी और सिर्फ़ शादी की बातें करनी पड़ेंगी। दादी फूला-फूला रेशमी पोशाक पहने शान से अकड़ी समोवार के पास बैठी हुई थीं, वह बहुत घमण्डी मालूम हो रही थीं, जैसा कि वह हमेशा मेहमानों के आने पर लगती थीं। पादरी अन्द्रेई चेहरे पर चालाकी भरी मुस्कुराहट लिये कमरे में आये।

"मुझे आप को स्वस्थ देखकर प्रसन्नता और पवित्र सन्तोष प्राप्त हुआ है," उन्होंने दादी से कहा। यह समझना मुश्किल था कि उन्होंने गम्भीरता से ऐसे कहा है या मज़ाक़ में।

4

खिड़कियों के शीशों और छत से हवा टकरा रही थी। सीटियों की-सी आवाज़ सुनायी पड़ रही थी और चिमनी में घरभुतना अपना उदास गीत गुनगुना रहा था। रात का एक बजने वाला था। घर का हर आदमी बिस्तर पर लेट चुका था, पर कोई भी सोया न था और नाद्या को लग रहा था कि नीचे से वायलिन बजाये जाने की आवाज़ आ रही है। बाहर से ज़ोर की खड़खड़

सुनायी दी। ज़रूर ही कहीं झिलमिली क़ब्ज़े से उखड़ गयी थी। एक मिनट बाद सिर्फ़ शमीज़ पहने नीना इवानोव्ना मोमबत्ती लिये कमरे में आयी।

उसने पूछा, "यह आवाज़ कैसी थी, नाद्या?"

नाद्या की माँ, बालों की चोटी बाँधे, झेंप भरी मुस्कुराहट लिये इस तूफ़ानी रात में अधिक बूढ़ी, मामूली सूरत और छोटे क़द वाली मालूम हो रही थी। नाद्या को याद आया कि कैसे वह अभी हाल ही तक अपनी माँ को अनूठी महिला समझती थी और उसकी बातें सुनने में गर्व महसूस करती थी। और अब किसी भी तरह उसे याद नहीं आ रहा था कि वे शब्द थे क्या - उसे जो शब्द याद आ रहे थे, वे मामूली और अनावश्यक प्रतीत होते थे। ऐसा लगता था कि चिमनी के भीतर भारी आवाज़ों में गाया जा रहा है, लगता है कि "हे मेरे परमात्मा!" शब्द भी सुनायी पड़ रहे थे। नाद्या बिस्तर में उठकर बैठ गयी और उसने अचानक सिसकियाँ भरते हुए सिर थाम लिया।

"माँ, माँ," वह चिल्लायी, "मेरी प्यारी माँ! काश तुम जानतीं कि मेरे ऊपर क्या गुज़र रही है! मैं तुमसे अनुरोध करती हूँ, प्रार्थना करती हूँ, मुझे चली जाने दो!"

"कहाँ?" भौचक्की होकर नीना इवानोव्ना ने पूछा और बिस्तर के किनारे बैठ गयी। "कहाँ जाना चाहती हो?"

नाद्या देर तक रोती-बिसूरती रही, एक भी शब्द बोलने में वह असमर्थ थी।

"मुझे इस शहर से चली जाने दो!" आख़िरकार उसने कहा। "शादी न होनी चाहिए और न होगी। समझो भी न! मैं उस आदमी से प्यार नहीं करती हूँ... मैं उसके बारे में बात करना भी सहन नहीं कर सकती हूँ।"

"नहीं, मेरी बच्ची, नहीं," नीना इवानोव्ना ने जल्दी से कहा, वह बहुत डर गयी थी। "अपने को शान्त करो। तुम्हारा मिज़ाज ठीक नहीं है। यह गुज़र जायेगा। ऐसा होता भी है। शायद तुम अन्द्रेई से झगड़ आयी हो, लेकिन प्रेमियों के झगड़े का अन्त चुम्बनों में होता है।"

"जाओ, माँ, जाओ," नाद्या रो पड़ी।

"हाँ," नीना इवानोव्ना ने थोड़ा रुककर कहा। "कल तक तुम एक छोटी बच्ची थी और अब तुम दुल्हन हो। प्रकृति सदैव परिवर्तनशील है। इसके पहले कि तुम समझ सको तुम स्वयं माँ बन जाओगी, बूढ़ी हो जाओगी और मेरी तरह तुम्हारी भी ज़िद्दी बेटी होगी।"

"माँ, अच्छी माँ, तुम तो समझदार हो, तुम दुखी हो," नाद्या ने कहा। "तुम बहुत दुखी हो; तुम ऐसी घिसी-पिटी बातें क्यों करती हो? क्यों, ईश्वर के लिए?"

नीना इवानोव्ना ने बोलने की कोशिश की, लेकिन एक शब्द भी नहीं बोल सकी, केवल सिसकियाँ भरती रही और अपने कमरे में लौट गयी। एक बार फिर चिमनी से भारी आवाज़ों का रुदन सुनायी दिया और एकाएक नाद्या भयभीत हो गयी। वह बिस्तर

से कूदकर अपनी माँ के कमरे में भाग गयी। नीना इवानोव्ना की आँखें रोने से सूज गयी थीं, वह नीले रंग का कम्बल ओढ़े हुए एक किताब हाथ में लिये लेटी हुई थी।

"माँ, मेरी बात सुनो!" नाद्या ने कहा, "सोचो, मुझे समझने की कोशिश करो, मैं तुमसे प्रार्थना करती हूँ। सिर्फ़ सोचो कि हमारा जीवन कितना ओछा और अपमानजनक है। मेरी आँखें खुल गयी हैं। मैं अब सब समझ रही हूँ। और तुम्हारा अन्द्रेई अन्द्रेइच क्या है? वह बिल्कुल भी अक्लमन्द नहीं है, माँ! हे ईश्वर, ज़रा सोचो, माँ, वह बेवक़ूफ़ है!"

नीना इवानोव्ना एक झटके से उठकर बैठ गयी।

"तुम और तुम्हारी दादी मुझे सताती रहती हो!" उसने हिचकी भरते हुए कहा। "मैं जीना चाहती हूँ, जीना!" उसने दोहराया और दो-एक बार छाती पर मुक्के मारे। "मुझे आज़ाद कर दो! मैं अभी भी जवान हूँ, मैं जीना चाहती हूँ। तुमने मुझे बुढ़िया बना दिया है!"

वह फूट-फूटकर रोती हुई कम्बल के नीचे सिकुड़कर लेट गयी। वह छोटी-सी, बेवक़ूफ़ और दयनीय लग रही थी। नाद्या ने अपने कमरे में जाकर कपड़े पहन लिये और फिर सुबह के इन्तज़ार में खिड़की के पास बैठ गयी। सारी रात वह बैठी सोचती रही और कोई सारी रात झिलमिली खटखटाता रहा और सीटी बजाता रहा।

दूसरे दिन सवेरे दादी ने शिकायत की कि हवा से सारे सेब गिर

गये हैं और आलूबुख़ारे का एक पुराना पेड़ टूट गया है। सुबह उदास, धुँधली थी। ऐसा दिन, जब कि सुबह से लैम्प जलाने की तबीयत होने लगती है। हर आदमी ठण्ड की शिकायत कर रहा था, खिड़कियों के शीशों पर पानी की बूँदें टप-टप कर रही थीं। नाश्ते के बाद नाद्या साशा के कमरे में गयी और बिना बोले कोने में रखी हुई आरामकुर्सी के सामने घुटनों के बल गिर पड़ी और अपने चेहरे को हाथों से ढाँप लिया।

"क्या हुआ?" साशा ने पूछा।

"मैं इस तरह नहीं रह सकती," उसने कहा। "मैं नहीं जानती कि मैं यहाँ पहले किस तरह रहती थी, मैं बिल्कुल नहीं समझ सकती। मैं अपने मंगेतर से घृणा करती हूँ, अपने आप से घृणा करती हूँ और मैं इस काहिल और खोखली ज़िन्दगी से घृणा करती हूँ..."

"हाँ, हाँ," साशा ने कहा, वह अभी तक समझा नहीं था कि बात क्या है।

"कोई नहीं... यह ठीक है... यह अच्छा है।"

"यह ज़िन्दगी मेरे लिए घृणित है," नाद्या ने आगे कहा, "मैं एक दिन भी और यहाँ रहना बरदाश्त नहीं कर सकती हूँ। मैं कल चली जाऊँगी। ईश्वर के लिए, मुझे अपने साथ ले चलो!"

साशा आश्चर्य में एक क्षण उसकी ओर देखता रहा। आख़िरकार बात उसकी समझ में आ गयी और वह एक बच्चे की तरह ख़ुश

हो गया, अपनी बाँहें हिलाने और जूतों से ताल देने लगा जैसे आनन्द के मारे नाच रहा हो।

"वाह! वाह!" उसने अपने हाथ मलते हुए कहा, "हे भगवान, कितनी अच्छी बात है।"

वह उसकी तरफ़ निर्निमेष आँखों से, उत्साह से देखती रही, जैसे मुग्ध हो गयी हो और प्रतीक्षा में थी कि वह फ़ौरन ही कोई ख़ास और असाधारण महत्त्व की बात कहेगा। साशा ने अभी तक उससे कुछ नहीं कहा था, लेकिन उसे अनुभव हो रहा था कि कुछ नवीन और विस्तृत, कोई अनोखी चीज़ उसके सामने आ रही है, जो वह पहले नहीं जानती थी, और वह साशा को आशा से देखती रही। वह हर चीज़ के लिए तैयार थी, मृत्यु के लिए भी।

"मैं कल जा रहा हूँ," कुछ देर सोचकर उसने कहा, "तुम मुझे छोड़ने के लिए स्टेशन तक आओगी... मैं तुम्हारा सामान अपने सन्दूक़ में रख लूँगा और तुम्हारे लिए टिकट ख़रीद लूँगा और जब तीसरी घण्टी बजे, तो तुम गाड़ी में चढ़ जाना और हम चले जायेंगे। मास्को तक मेरे साथ चलो और वहाँ से पीटर्सबर्ग ख़ुद अकेली जाना। क्या तुम्हारे पास पासपोर्ट है?"

"हाँ।"

"तुम इसके लिए कभी भी नहीं पछताओगी, तुम्हें कभी अफ़सोस नहीं होगा, क़सम से," साशा ने उत्साह से कहा। "तुम चली जाओगी और अध्ययन करोगी, और बाद में अपने आप रास्ता

निकल आयेगा। तुम अपनी ज़िन्दगी को उलट-पलट दोगी, हर चीज़ बदल जायेगी। सबसे बड़ी बात तो ज़िन्दगी में फेर लाना है, बाक़ी सब बेकार है। अच्छा तो हम लोग कल जा रहे हैं?" - "हाँ, हाँ! भगवान के वास्ते, हाँ!"

नाद्या का विचार था कि वह उद्वेलित हो गयी है और उसका मन कभी इतना बोझिल नहीं था, उसे पूरा यक़ीन था कि जाने तक उसका मन पीड़ित रहेगा, दुखद विचार उसके दिमाग़ पर छा जायेंगे। लेकिन वह ऊपर अपने कमरे में पहुँचकर बिस्तर पर लेटी ही थी, कि गहरी नींद सो गयी और आँसू भरे चेहरे और होंठों पर मुस्कुराहट लिये शाम तक सोती रही।

5

घोड़ागाड़ी मँगायी जा चुकी थी। नाद्या कोट पहने और टोप लगाये आ़खिरी मरतबा अपनी माँ और उन सब चीज़ों को, जो अभी तक उसकी थीं, देखने ऊपर गयी। वह अपने कमरे में थोड़ी देर बिस्तर के पास खड़ी रही, बिस्तर अभी तक गरम था, चारों ओर देखा और फिर चुपचाप अपनी माँ के कमरे में गयी। नीना इवानोव्ना सो रही थी और उसके कमरे में सन्नाटा था। माँ के बाल ठीक करने और उसे चूमने के बाद एक-दो मिनट तक खड़ी रही... तब धीरे-धीरे नीचे उतर गयी।

बारिश की झड़ी लगी हुई थी। पानी से भीगी घोड़ागाड़ी ओसारे के सामने खड़ी थी। गाड़ी की छतरी उठी हुई थी।

"तुम्हारे लिए वहाँ जगह नहीं है, नाद्या," नौकर गाड़ी में सामान

रखने लगे तो दादी ने कहा। "क्या ज़रूरत पड़ी है तुम्हें ऐसे ख़राब मौसम में उसे छोड़ने जाने की। अच्छा हो घर पर ही रहो। ज़रा बारिश को तो देखो!"

नाद्या ने कुछ कहने की कोशिश की, लेकिन कह न सकी। साशा ने उसे गाड़ी में बिठाया और कम्बल से उसके पैर ढँक दिये। और ख़ुद भी उसकी बग़ल में बैठ गया।

"विदा, ईश्वर तुम्हारी रक्षा करे!" दादी ओसारे से चिल्लायीं। "मास्को पहुँचकर चिट्ठी लिखने का ख़याल रखना, साशा!"

"अच्छी बात है, विदा दादी!"

"स्वर्ग की देवी तुम्हारी रक्षा करे!"

"क्या मौसम है!" साशा ने कहा।

नाद्या ने अब रोना शुरु किया। उसे अब जाकर ज्ञान हुआ कि वह निश्चय ही चली जायेगी। अभी तक उसको इसका वास्तव में विश्वास नहीं हो रहा था, अपनी माँ के पास खड़ी थी, तब भी नहीं, दादी से विदा लेते समय भी नहीं। विदा, मेरे शहर! तमाम बातें जल्दी-जल्दी उसके दिमाग़ में घूम गयीं - अन्द्रेई, उसके पिता, नया मकान और फूलदान वाली नंगी औरत। लेकिन अब उसे इन बातों से डर नहीं लगा और न उसे मन पर बोझा ही मालूम हुआ। ये छोटी और क्षुद्र बातें हो गयी थीं। यह सब अतीत में दूर ही दूर खोता जा रहा था और जब वे रेल में सवार हुए और गाड़ी चल दी, तो उसका सम्पूर्ण अतीत - इतना बड़ा

और महत्त्वपूर्ण - सिमट, सिकुड़कर ज़रा-सा रह गया; और एक शानदार भविष्य, जिसकी अभी तक केवल रेखा ही दिखायी देती थी, उसके सामने उभरता जा रहा था। गाड़ी की खिड़कियों पर पानी की बूँदें टप-टप कर रही थीं। हरे-भरे खेतों, तेज़ी से गुज़रने वाले तार के खम्भों तथा तारों पर बैठी चिड़ियों के सिवा और कुछ नहीं दिखायी पड़ रहा था, और एकाएक वह आनन्दविभोर हो उठी - उसे याद आया कि वह आज़ाद होने और पढ़ने के लिए जा रही है, जैसे कभी पुराने ज़माने के लोग भागकर कज़्ज़ाकों में मिल जाते थे। वह हँस रही थी, रो रही थी और प्रार्थना कर रही थी।

"सब कुछ ठीक है!" साशा मुस्कुराते हुए कह रहा था, "सब कुछ!"

6

पतझड़ समाप्त हुआ और उसके बाद जाड़ा भी। नाद्या को अब घर की याद बहुत सताती और वह हर रोज़ अपनी दादी और माँ के बारे में सोचती। उसे साशा का भी ख़याल आता। घर से सौहार्दपूर्ण, शान्त पत्र आते, जिससे लगता था कि सारी बातें क्षमा कर दी गयी हैं और भुलाई जा चुकी हैं। मई की परीक्षाओं के बाद वह स्वस्थ और सानन्द घर को रवाना हो गयी। साशा से मिलने के लिए वह मास्को में रुकी। वह बिल्कुल वैसा ही था जैसा कि साल-भर पहले - दाढ़ी, अस्तव्यस्त बाल, वही लम्बा कोट और किरमिच की पतलून; उसकी आँखें हमेशा की भाँति

बड़ी और सुन्दर थीं। लेकिन वह बीमार और सताया हुआ लग रहा था। वह अधिक बूढ़ा और दुबला दिखायी दे रहा था और लगातार खाँसता था। नाद्या को वह नीरस और तनिक ग्रामीण लग रहा था।

"अरे, यह तो नाद्या है!" ख़ुशी से हँसते हुए वह चिल्लाया। "मेरी प्यारी, मेरी लाड़ली!"

वे दोनों साथ-साथ तम्बाकू के धुएँ और रंग व स्याही की दमघोट बदबू वाले लिथो-छापेख़ाने में कुछ देर बैठे; फिर साशा के कमरे में चले गये, वहाँ तम्बाकू की बू भरी हुई थी, कूड़ा-करकट फैला हुआ था और चारों तरफ़ गन्दगी थी। मेज़ पर ठण्डे समोवार के पास एक टूटी प्लेट रखी हुई थी, जिसमें भूरा-सा एक काग़ज़ का टुकड़ा था और मेज़ व फ़र्श मरी हुई मक्खियों से भरे हुए थे। यहाँ की हर चीज़ बतला रही थी कि साशा अपनी निजी ज़िन्दगी का ज़रा भी ख़याल नहीं करता, अस्तव्यस्त रहता है और उसे आरामदेह जीवन के प्रति उपेक्षा है। और यदि कोई उससे उसके व्यक्तिगत सुख और निजी जीवन के बारे में पूछे, उसके प्रति प्रेम की बात करे, तो उसकी समझ ही में कुछ नहीं आयेगा और वह सिर्फ़ हँस देगा।

"हाँ, सब ठीक ही रहा," नाद्या ने जल्दी से कहा। "माँ मुझसे मिलने के लिए पतझड़ में पीटर्सबर्ग आयी थीं, उनका कहना था कि दादी नाराज़ नहीं हैं, सिर्फ़ मेरे कमरे में आती रहती हैं, दीवालों पर सलीब का चिह्न बनाती रहती हैं।"

साशा ख़ुशदिल मालूम हो रहा था, लेकिन खाँस रहा था और फटी आवाज़ में बातें कर रहा था और नाद्या उसकी ओर ताकती रही। वह सोच रही थी कि क्या वह वास्तव में बहुत बीमार है या यह उसकी कल्पना है।

"साशा, मेरे प्यारे!" उसने कहा, "तुम तो सचमुच बीमार हो।"

"मैं ठीक हूँ, ज़रा अस्वस्थ हूँ पर कोई गम्भीर बात नहीं..."

"ईश्वर के लिए," नाद्या ने बेचैन आवाज़ में कहा, "तुम डॉक्टर को दिखाने के लिए क्यों नहीं जाते? तुम अपने स्वास्थ्य का ध्यान क्यों नहीं रखते? मेरे प्यारे, अच्छे साशा!" उसने कहा और उसकी आँखों में आँसू भर आये और किसी वजह से अन्द्रेई अन्द्रेइच, फूलदान वाली नंगी औरत और उसके सारे अतीत का चित्र, जो बचपन की तरह बहुत धुँधला और दूर प्रतीत होता था, उसके दिमाग़ में घूम गया। वह रो उठी क्योंकि अब उसे साशा साल-भर पहले की तरह मौलिक, चतुर और दिलचस्प नहीं मालूम हुआ। "साशा, प्रिय, तुम बहुत बीमार हो, तुम्हें पीला और क्षीण न देखने के लिए मैं क्या कुछ करने को तैयार नहीं। मैं तुम्हारी बहुत ऋणी हूँ। तुम कल्पना नहीं कर सकते कि तुमने मेरे लिए कितना काम किया है! वास्तव में, साशा, तुम मेरे जीवन में सबसे घनिष्ठ और प्रिय व्यक्ति हो।"

वे बैठे हुए बातें करते रहे। और अब पीटर्सबर्ग में एक जाड़ा व्यतीत करने के बाद नाद्या को लग रहा था कि साशा की बातचीत में, उसकी मुस्कुराहट और उसकी सम्पूर्ण आकृति में

कोई ऐसी चीज़ थी, जो पुराने फ़ैशन की, पिछड़ी-गुज़री हुई है, जो शायद क़ब्र में पहुँच चुकी है।

"मैं परसों वोल्गा पर सैर करने के लिए जा रहा हूँ," साशा ने कहा, "और फिर कुमीस (घोड़ी के दूध का पेय, जो सेहत के लिए अच्छा होता है। - सं.) पीने जाऊँगा। मेरा एक दोस्त और उसकी बीवी मेरे साथ जा रहे हैं। दोस्त की बीवी अद्भुत औरत है। मैं उसे समझाने की कोशिश करता रहता हूँ कि वह पढ़े। मैं चाहता हूँ कि वह अपनी ज़िन्दगी को उलट-पलट दे।"

कुछ देर बातें करके वे स्टेशन चले गये। साशा ने उसे चाय पिलायी और उसके लिए कुछ सेब ख़रीदे और जब गाड़ी चली और वह मुस्कुराता हुआ अपना रुमाल हिला रहा था, तो नाद्या उसके पैर देखकर ही समझ गयी कि वह कितना बीमार है और उसके ज़्यादा दिन ज़िन्दा रहने की आशा नहीं है।

नाद्या अपने शहर में दोपहर को पहुँची। जब वह स्टेशन से अपने घर जा रही थी, तो उसे सड़कें अस्वाभाविक रूप से चौड़ी लग रही थीं और मकान छोटे और ज़मीन से सटे-सटे। उसे कोई भी आदमी न दिखायी पड़ा सिवा पियानोसाज़ जर्मन के, जो अपना मटमैला ओवरकोट पहने हुए था। मकान धूल से सने हुए मालूम पड़ रहे थे। दादी ने, जो अब वाक़ई बूढ़ी हो गयी थीं और पहले ही की भाँति मोटी और असुन्दर थीं, नाद्या की कमर में बाँहें डाल दीं और नाद्या के कन्धे पर सिर रखकर बहुत देर तक रोती रहीं, गोया वह अपने को अलग न कर पा रही हों। नीना इवानोव्ना

की भी उम्र बहुत ज़्यादा लगने लगी थी और उसका चेहरा उतरा हुआ था, मगर वह अब भी कमर पर कसी पोशाक पहने थी और उसकी उँगलियों पर हीरे चमक रहे थे।

"मेरी प्यारी!" उसने ऊपर से नीचे तक काँपते हुए कहा, "मेरी दुलारी!"

फिर वे बैठ गयीं और चुपचाप रोती रहीं। यह सहज ही देखा जा सकता था कि दादी और माँ दोनों समझती थीं कि अतीत हमेशा के लिए खो गया है। उनका सामाजिक रुतबा, पहले का मान-सम्मान, घर में मेहमान बुलाने का हक़ ख़त्म हो चुका है। वे उन आदमियों की तरह महसूस कर रही थीं, जिनकी आरामदेह और बिना परेशानी की ज़िन्दगी में किसी रात पुलिस वाले आयें और तलाशी लें और यह पता लगे कि घर के मालिक ने ग़बन या जालसाज़ी की है, और फिर हमेशा के लिए आरामदेह और बिना परेशानी की ज़िन्दगी ख़त्म!

नाद्या ऊपर गयी और देखा वही पुराना बिस्तर, सफ़ेद, मामूली पर्दों वाली वही खिड़कियाँ, खिड़की से बग़ीचे का वही दृश्य - धूप से नहाया हुआ, ख़ुश, ज़िन्दा। उसने अपनी मेज़ छुई, बैठ गयी और कुछ सोचती रही। उसने अच्छा खाना खाया और फिर स्वादिष्ट, गाढ़ी मीठी क्रीम वाली चाय पी। मगर उसे कुछ कमी-सी महसूस हो रही थी। कमरों में एक खोखलापन नज़र आ रहा था, छत बहुत नीची लगी। रात में, जब वह सोने गयी और उसने कम्बल ओढ़ा, तो उसे गरम और बहुत नर्म बिस्तर में लेटना

न जाने क्यों उपहासास्पद लगा।

नीना इवानोव्ना एक मिनट के लिए आयी और अपराधी की तरह सहमी-सी चारों तरफ़ देखती हुई बैठ गयी।

"अच्छा, नाद्या," उसने कहा, "क्या तुम ख़ुश हो? वाक़ई ख़ुश हो?"

"ख़ुश हूँ, माँ।"

नीना इवानोव्ना ने उठकर नाद्या और खिड़कियों के ऊपर क्रास का चिह्न बनाया।

"और मैं जैसा कि तुम देख रही हो, धार्मिक हो गयी हूँ," उसने कहा। "मैं दर्शन का अध्ययन कर रही हूँ और सोचती रहती हूँ, सोचती रहती हूँ... और बहुत-सी चीज़ें अब मेरे लिए दिन की रोशनी की तरह साफ़ हो गयी हैं। मुझे लगता है कि सबसे महत्त्व की बात यह है कि जीवन मानो एक प्रिज़्म से गुज़रे!"

"माँ, दादी कैसी हैं?"

"ठीक ही लगती हैं। जब तुम साशा के साथ चली गयी थीं और दादी ने तुम्हारा तार पढ़ा, तो वह ज़मीन पर गिर पड़ीं। उसके बाद वह तीन दिन तक बिस्तर पर पड़ी रहीं और फिर वह रोने और प्रार्थना करने लगीं। लेकिन अब वह ठीक हैं।"

नीना इवानोव्ना उठकर कमरे में चहलक़दमी करने लगी।

"ठक-ठक..." चौकीदार की आहट आयी, "ठक-ठक, ठक-ठक..."

"सबसे महत्त्व की बात यह है कि जीवन मानो एक प्रिज़्म से गुज़रे," उसने कहा, "दूसरे शब्दों में अपनी चेतना में जीवन को सरल तत्वों में विभाजित कर देना चाहिए, सात मौलिक रंगों की तरह और हर तत्व का अलग-अलग अध्ययन करना चाहिए।"

फिर नीना इवानोव्ना ने और क्या कहा और वह कब चली गयी नाद्या को नहीं मालूम था, क्योंकि वह फ़ौरन ही सो गयी थी।

मई गुज़री और जून आया। नाद्या घर की आदी हो गयी। दादी समोवार के पास बैठी हुई चाय पिलातीं और ठण्डी साँसें भरती रहतीं। नीना इवानोव्ना शाम को अपने दर्शन के बारे में बातें करती। वह अब भी एक आश्रित की तरह घर में रहती और थोड़े से कोपेक की भी ज़रूरत पड़ने पर दादी के सामने हाथ पसारती। घर में मक्खियाँ भरी थीं और छत दिनोदिन नीचे आती प्रतीत हो रही थी। इस डर से कि कहीं पादरी अन्द्रेई और अन्द्रेई अन्द्रेइच से मुलाक़ात न हो जाये दादी और नीना इवानोव्ना कभी बाहर नहीं निकलती थीं। नाद्या बग़ीचे और गलियों में टहलती और मकानों और गन्दली चहारदीवारों को देखती और उसे लगता कि शहर कब का बूढ़ा हो गया है, इसके दिन बीत चुके हैं और अब यह अपने अन्त की प्रतीक्षा में है या फिर ताज़गी और जवानी के आरम्भ की प्रतीक्षा में। काश यह नया और उज्ज्वल जीवन जल्दी आ जाये, जब हम सिर ऊँचा कर क़िस्मत की आँखों में आँखें डालकर देख सकें यह जानते हुए कि हम सही हैं, ख़ुश और आज़ाद रह सकें! ऐसी ज़िन्दगी देर-सबेर आकर रहेगी। आख़िर तो वह वक़्त आयेगा ही जब दादी के मकान का कुछ भी

नहीं रहेगा, जहाँ सारी व्यवस्था ही ऐसी है कि चार नौकर तहख़ाने के एक गन्दे कमरे में ही रह सकते हैं, और आ़खिर वह वक़्त भी तो आयेगा, जब इस मकान का चिह्न भी शेष नहीं रहेगा, जब इसका अस्तित्व भूल जायेगा और कोई इसे याद भी नहीं करेगा। नाद्या का एकमात्र मनबहलाव पड़ोस के घर के बच्चे थे जो, जब वह बग़ीचे में टहलती तो चहारदीवारी पर हाथ मारकर हँसते हुए चिल्लाते -

"दुल्हन! दुल्हन!"

सारातोव से साशा का ख़त आया। उसने अपनी टेढ़ी-मेढ़ी हल्की-फुलकी लिखावट में लिखा था कि वोल्गा की सैर बहुत सफल रही है। लेकिन वह सारातोव में ज़रा बीमार पड़ गया है, उसकी आवाज़ ग़ायब हो गयी है और पिछले पन्द्रह दिन से वह अस्पताल में है। नाद्या समझ गयी कि इसके क्या मानी हैं और एक आशंका, एक विश्वास-सा उसके दिल में बैठ गया। वह खीज रही थी कि आशंका और ख़ुद साशा के विचार से वह अब पहले की भाँति द्रवित नहीं हो पा रही है। उसे ज़िन्दा रहने की, पीटर्सबर्ग जाने की इच्छा हो रही थी, और साशा के साथ दोस्ती अतीत की चीज़ मालूम हो रही थी, जो प्रिय होने पर भी बहुत दूर हो गयी थी। वह सारी रात सो नहीं सकी और सवेरे खिड़की पर जाकर बैठ गयी, उसके कान बाहर से आने वाली आवाज़ों पर लगे हुए थे। और वास्तव में नीचे से बातचीत की आवाज़ आयी - दादी घबराहट के साथ किसी से जल्दी-जल्दी कुछ पूछ रही थीं, फिर कोई रो दिया... जब नाद्या नीचे गयी, तो दादी

कमरे के कोने में खड़ी हुई प्रार्थना कर रही थीं और उनका चेहरा आँसुओं से भरा हुआ था। मेज़ पर एक तार पड़ा हुआ था।

दादी का रोना सुनते हुए नाद्या कमरे में बहुत देर तक इधर से उधर चक्कर काटती रही। फिर तार उठाकर पढ़ा। तार में लिखा था कि कल सुबह सारातोव में अलेक्सान्द्र तिमोफ़ेइच यानी साशा क्षय से मर गया। दादी और नीना इवानोव्ना मृतक के लिए प्रार्थना करवाने के लिए गिरजाघर गयीं और नाद्या बहुत देर तक कमरों में सोचती हुई चक्कर काटती रही। वह अच्छी तरह समझती थी कि साशा की इच्छानुसार उसकी ज़िन्दगी उलट-पलट हो गयी थी, वह यहाँ पर अकेली, परायी-सी थी, किसी को उसकी यहाँ ज़रूरत नहीं थी। और यहाँ पर कोई चीज़ नहीं थी, जिसे वह चाहती हो। विगत छीनकर ख़त्म कर दिया गया था मानो वह आग में जलकर भस्म हो गया था और राख हवा में बिखेर दी गयी थी। वह साशा के कमरे में गयी और वहाँ खड़ी रही।

"विदा, प्यारे साशा!" उसने मन ही मन कहा। उसकी कल्पना में उसके सामने नयी, वृहत और विशाल ज़िन्दगी थी और यह ज़िन्दगी, अभी तक अस्पष्ट और रहस्यमय, उसे बुला रही थी, आगे खींच रही थी।

वह ऊपर सामान बाँधने चली गयी और दूसरे दिन सवेरे अपने घरवालों से विदा लेकर प्रसन्नचित्त और उमंगों से भरी हुई शहर से चली गयी - कभी भी वापस न लौटने के विश्वास के साथ।

1903

(अनु. : कृष्ण कुमार)